

सामुदायिक संस्कृति की लोक विरासत 'घराट' : सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन (उत्तराखण्ड के विशेष सन्दर्भ में)

प्रो. चमन लाल शर्मा
सह-अध्येता

उत्तराखण्ड के पर्वतीय समाज की सामुदायिक संस्कृति की महत्पूर्ण धुरी के रूप में सदियों से प्रचलित 'घराट' न केवल लुप्त हो रहे हैं, बल्कि भूमण्डलीय होती जा रही समाज व्यवस्था के कारण लगभग खत्म होने के खतरे तक पहुँच गये हैं। प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान के साथ दौड़ने की होड़ में कुछ चीजें सचमुच बहुत तेजी के साथ पीछे छूटती जा रही हैं। मैंने इस अध्ययन में खत्म होती अपनी लोक-प्रज्ञा की विरासत को वैश्विक प्रगति की चेतना में शामिल करने के सरोकारों पर बात की है, तथा यांत्रिक विकास के साथ-साथ जनसाधारण के प्रामाणिक ज्ञान की मूल्यवान उर्वरा को तरक्की के आधुनिक मॉडल के साथ जोड़ने के कारगर उपायों की चर्चा की है।

अध्ययन का उद्देश्य -

- लुप्त होती उत्तराखण्ड की सामुदायिक संस्कृति की लोक विरासत 'घराट' के सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का विश्लेषण करना
- इस अध्ययन के माध्यम से यह भी ज्ञात करना कि किन कारकों और परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप सामुदायिक विरासत का यह अनूठा कौशल, लोक-प्रज्ञा एवं प्रकृति संरक्षण की यह कारगर धरोहर क्रमिक परित्याग के कारण विलुप्त हो रही है।
- 'घराटों' के विलुप्त होने के साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं भाषायी आयाम क्या हैं
- इस अध्ययन से यह भी ज्ञात करने का प्रयास किया जाएगा कि विकास के नवीन आधारों, प्रतिमानों और उपकरणों के साथ 'घराट-संस्कृति' के संतुलित स्वीकरण को किस सीमा तक अंगीकृत किया जा सकता है।
- इसके अतिरिक्त विलुप्त होती गढ़वाली लोक विरासत 'घराट' की स्थिति-परिस्थिति और उसके सामाजिक-सांस्कृतिक प्रभाव का आकलन कर 'घराटों' के संरक्षण की व्यावहारिक कार्य योजना संबंधी बहुआयामी निष्कर्षों को सामने लाना, 'घराटों' से संबंधित अज्ञात तथ्यों को समाज के सामने लाना,

घराटों के खत्म होने के परिणाम स्वरूप स्थानीय लोक-समाज पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभावों का आकलन करना, घराटों के लुप्त होने से स्थानीय पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना, स्थानीय प्रशासन एवं राज्य सरकार को घराटों के संरक्षण, उनके पुनर्जीवन से संबंधित स्थानीय आवश्यकताओं की दृष्टि से सुझाव प्रेषित करना भी इस अध्ययन का लक्ष्य है।

अध्ययन का क्षेत्र-

- इस अध्ययन का क्षेत्र उत्तराखण्ड के 13 जिलों- चमोली, पौड़ी, उत्तरकाशी, टिहरी गढ़वाल, रुद्रप्रयाग, अल्मोड़ा, नैनीताल, पिथौरागढ़, देहरादून, उधम सिंह नगर, हरिद्वार, चंपावत एवं बागेश्वर तक सीमित है।

प्रविधि-

सर्वेक्षण प्रविधि

प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों का उपयोग

- प्राथमिक तथ्यों के अंतर्गत साक्षात्कार-

इसके अतिरिक्त सूचना दाताओं से औपचारिक वार्तालाप तथा क्षेत्र के निरीक्षण के माध्यम से सूचनाओं का संकलन किया जाएगा।

- द्वितीयक तथ्य संकलन

इस अध्ययन से संबंधित प्रकाशित सामग्री, सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं, कार्यक्रमों, लोक-साहित्य एवं इंटरनेट पर उपलब्ध सामग्री का प्रयोग भी अध्ययन को गहनता प्रदान करने के लिए किया जाएगा।

परिचय

- अरूणाचल प्रदेश में 'चुस्कोर' (Chuskor), लडाख में 'रंताक' (Rantak) और सम्पूर्ण हिमाचल, जम्मू-कश्मीर एवं उत्तराखण्ड में 'घराट', 'घट' या 'घट्ट' के नाम से प्रसिद्ध यह मानव निर्मित एक बेहद साधारण और प्राथमिक तकनीक है, जिसमें पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना लोक-कौशल और पारम्परिक ज्ञान के आधार पर अनाज पीसने की एक परिष्कृत प्रणाली विकसित की गयी है।

- उत्तराखण्ड में घराटों का उद्भव लगभग सातवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है।
- 1514 के चन्द्र शासन के ताम्र पत्रों पर भी घराटों का उल्लेख मिलता है।
- 1842 के बैकेट समझौते के तहत लुसिंग्टन के कार्यकाल में घराटों पर टैक्स लगाया गया। (V.A.

Stowel, A Manual of the Land Tenures of the Kumaon Division, Hill Tracts, Chapter VII, Water Mills, First Published in 1953, reprinted 1996, CDS, Academy of Administration, Nainital: pages 153-156)

- हेस्को (HESCO) के संस्थापक डॉ. अनिल जोशी के मुताबिक हिमालयी क्षेत्र में करीब 2 लाख घराट थे। उत्तराखण्ड में इनकी संख्या करीब 70000 से अधिक थी।
- *The Report on the Industrial Survey of the Garhwal district of the United Provinces and the Report on the Industrial Survey of the Almora district of the United Provinces* compiled by H.N. Sapru in 1924 and 1925 में भी घराटों के महत्व को स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है।

वस्तुतः उत्तराखण्ड के ये 'घराट' वहाँ की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन की धड़कन हुआ करते थे। 'घराट' अर्थात् पानी से चलने वाली चक्की या पनचक्की, मानव निर्मित एक बेहद साधारण और प्राथमिक तकनीक है, जिसमें पानी की गतिज ऊर्जा का उपयोग करके पर्यावरण को नुकसान पहुँचाए बिना अनाज पीसने की एक परिष्कृत प्रणाली विकसित की जाती है। इन 'घराटों' को अरसे से हिमालयी इलाकों में छोटी नदियों, जलधाराओं या गाड़-गधेरों के किनारे विकसित किया जाता रहा है, जिनके निर्माण और संचालन में वहाँ के लोक-समाज की आपसी सहभागिता और सामूहिक श्रम की परम्परा निहित रहती है। ये 'घराट' सदियों से उत्तराखण्ड के पर्वतीय समाज का अटूट हिस्सा रही हैं। स्थानीय तौर पर इन्हें घट, घराट, पण-पिसुल, पनचक्की आदि अनेक नामों से जाना जाता है। 'घराट' निर्माण और उनके संचालन से वहाँ की नदियों, जलधाराओं और स्थानीय पर्यावरण पर किसी भी प्रकार का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। यह अनोखी तकनीक बिना बिजली और जीवाश्म ईंधन के चलती है। इस तरह प्रकृति को बिना नुकसान पहुँचाए प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाते हुए कुदरती शक्ति का इस्तेमाल किया जाता है। 'घराट' सिर्फ अनाज पीसने या धान कूटने

के यन्त्र भर नहीं हैं, बल्कि पर्वतीय क्षेत्र की सामुदायिक संस्कृति और प्राकृतिक संसाधनों के बीच सामंजस्य के अनूठे सेतु हैं। 'घराट' सामान्य तौर पर गांवों या जनवासों से कुछ दूरी पर जल स्रोतों के आस-पास स्थित होते हैं, यहाँ गाँवों के लोग अनाज पिसवाने के लिए एकत्र होते हैं और अनाज की पिसाई में समय लगता है, इसलिए स्थानीय लोग सामूहिक रूप से लोक-गीत, लोक-नृत्य, लोक-प्रहसन आदि अनेक लोक-विधाओं के माध्यम से न केवल अपना मनोरंजन करते हैं, बल्कि लोक साहित्य की अमूल्य सम्पदा को भी सहेजने का काम करते हैं। घराट संस्कृति वस्तुतः सामुदायिकता को तो बढ़ावा देती ही है, जल, जंगल, जमीन के साथ लोक-भाषा, लोक संस्कृति और लोक साहित्य के स्वाभाविक संरक्षण पर भी जोर देती है। प्राकृतिक संसाधन, पारंपरिक ज्ञान और स्थानीय कौशल की उत्कृष्ट व्यवस्था के रूप में ये 'घराट' स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ पहाड़ की श्रमशील सामुदायिक संस्कृति को भी दर्शाती हैं। हिमालय के इस क्षेत्र की प्रकृति ने, यहाँ के पशु-पक्षियों ने और मधुर निर्झरों ने यहाँ के लोगों को अमर प्रेरणाएं दी हैं, उन्हें अभावों में भी जीवन का उल्लास बनाए रखने का साहस और संबल प्रदान किया है।

वस्तुतः 'घराट' की यह प्राचीन संस्कृति सामुदायिक सहयोग एवं मनुष्य के साथ प्रकृति के सन्तुलन का अनुपम एवं उल्लेखनीय उदाहरण है। घराटों को हम बहुउद्देश्यीय जल विद्युत परियोजनाओं का प्रथम आविष्कार भी कह सकते हैं।

'घराट' जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज) और ग्लोबल वार्मिंग का एक सरल जबाब भी हैं। आज पूरी दुनिया ग्लोबल वार्मिंग और क्लाइमेट चेंज के खतरे से सहमी हुई है। कहीं बाढ़ तो कहीं बेमौसम बारिश या ओलावृष्टि मुसीबत बनकर आते हैं। जलवायु परिवर्तन को लेकर विद्वानों में दो मत हो सकते हैं लेकिन यह मानव सभ्यता और पृथ्वी पर जनजीवन के लिए एक खतरा है, इस पर किसी को भी संदेह नहीं है। पूरी दुनिया के वैज्ञानिक और राजनैतिक नेतृत्व इस खतरे को कम करने या टालने के लिए भरसक प्रयास कर रहे हैं। जहाँ एक तरफ ग्रीन टेक्नोलॉजी (green technology), फ्यूल एफिशिएंसी (fuel efficiency), रिन्यूअल एनर्जी (renewable energy) और न जाने कितने नए-नए शब्द सुनाई दे रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ प्रकृति और पर्यावरण को नुकसान पहुँचाने वाले किसी भी कार्य को करने में इंसान जरा भी झिझक नहीं रहा है। अनाज पीसने या धान से चावल निकालने जैसे बेहद साधारण कामों के लिए भी बिजली/डीजल जैसे ऊर्जा के उच्चतम स्रोतों का प्रयोग कर रहा है, जबकि पर्वतीय समाज सदियों से अनाज पीसने या धान कूटने जैसे साधारण कार्यों

के लिए ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का सफलतापूर्वक प्रयोग करके प्रकृति संरक्षण का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करता रहा है। पूरे हिंदूकुश-हिमालय क्षेत्र में लगभग 2 लाख घराटों का इतिहास मिलता है जो धीरे-धीरे सरकारों की उदासीनता, गलत तकनीक के चयन और ऊर्जा के उच्चतम स्रोतों के अंधाधुंध इस्तेमाल के परिणामस्वरूप आज लगभग समाप्त होने के कगार पर पहुंच गये हैं।

आर्थिक संकट और बाजार के उतरते-चढ़ते भाव पर्वतीय लोक-समाज की जिन्दगी को और अधिक अस्थिर बना रहे हैं। जिस 'घराट-संस्कृति' ने उत्तराखण्ड के लोक-जीवन को आदिम असहाय अवस्था में भी दुःख व कठिनाइयों से लड़ने का सामर्थ्य प्रदान किया, जिस 'घराट-संस्कृति' ने उन्हें परिस्थितियों के साथ जूझने के लिए सामूहिक शक्ति का उल्लासमय सम्बल दिया, आज वही 'घराट-संस्कृति' समाज और सरकार की अनदेखी का शिकार होकर विलुप्त होती जा रही है।

वस्तुतः ये 'घराट' सामाजिक-सांस्कृतिक केन्द्र भी हुआ करते थे, जहाँ पर्वतीय जीवन की विषम परिस्थितियों और कठिन दिनचर्या से लोग राहत का अनुभव भी करते थे। इसलिए लोक-संस्कृति और लोक-कौशल की इस अत्यन्त महत्वपूर्ण धरोहर को सहेजने और संरक्षित करने के लिए वैयक्तिक प्रयासों के साथ संस्थागत प्रयासों की भी नितान्त आवश्यकता है।

संस्कृति के साझा मूल्य, रीति रिवाज और परंपराएं भाषा के माध्यम से ही जीवित रहती हैं। भाषा की हानि का अर्थ है संस्कृति और अस्मिता की हानि। पूरी दुनिया की भाषाएं बड़ी संख्या में औपनिवेशीकरण और प्रवास की प्रक्रियाओं के कारण लुप्त हो गई हैं। परिणाम स्वरूप भाषाओं के लुप्त होने के कारण कई संस्कृतियाँ भी विलुप्त हो गई हैं।

भारत दुनिया में सांस्कृतिक और भाषाई रूप से सर्वाधिक विविधता वाला देश है। भारतीय संस्कृति मनुष्य केंद्रित है, तथा पूरी मानव जाति को बेहतर मनुष्य होने का रास्ता दिखाने वाली मौलिक संस्कृति है, जो भारत की अलग-अलग बोलियों और भाषाओं से बनी है। इसीलिए भारत के सांस्कृतिक उत्थान के लिए भी यह नितांत जरूरी है कि तमाम वैज्ञानिक प्रगति और उपलब्धियों के साथ-साथ भारत की भाषा-बोलियों का भी संरक्षण किया जाए।

भाषा, साहित्य और संस्कृति किसी भी समाज की आत्म गौरव की विरासत होती हैं। भाषा और संस्कृति के खत्म होने से सामाजिक पहचान के अस्तित्व पर भी संकट खड़ा हो जाता है। सामूहिक चेतना की लोक संस्कृति में जीने वाला समाज अपनी भाषा के बिना अपनी उस विरासत को कैसे बचा पाएगा जिसके सहारे उस लोक समाज ने सदियों तक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति की है।

'घराटों' के खत्म होने से 'घराटों' से जुड़ी भाषा और उसकी शब्दावली भी धीरे-धीरे चलन और व्यवहार से बाहर होती जा रही है-

'घराटों' से जुड़े कुछ शब्द जो धीरे-धीरे खत्म हो रहे हैं-

कूल, गूल	-	नहर
पन्याळ, पैन्याळ, पैन्याळी	-	चीड़ की लकड़ी से बनाया जाता था इसमें लीसे की मात्रा अधिक होने से इस पर पानी का असर कम होता था।
भ्योंर, फितौड़ी, फिरकी, घिरनी	-	घराट के पाटों को घुमाने वाली चकरी, टर्बाइन
पाट	-	पत्थर के दो पाट, जिनके बीच में अनाज पीसा जाता है
चरकुल, चकुल	-	लकड़ी का एक टुकड़ा, जिसकी सहायता से अनाज व्यवस्थित रूप से पाटों के बीच डाला जाता है
भग्वार या भगवाळ	-	पिसाई का वह छोटा सा भाग जो पिसाई के बदले घराटी को दिया जाता है
घराटी	-	'घराट' की देख-रेख करने वाला व्यक्ति अथवा 'घराट' का मालिक
घाण	-	पिसाई का एक चक्र
पाथा या पाथू	-	अनाज की मात्रा नापने का काठ का एक बर्तन

गढ़वाली का एक खुदेड़ गीत को देखिए-

हे उंचि डांड्यों तुम निसि हवे जावा, घणी कुळ्यों तुम छंटी जावा ।

मैकु लगीं च खुद मैतुडा की, बुबा जि का देस छखण द्यावा ॥

यहाँ अर्थ तो है पर सन्दर्भ नहीं है।

गढ़वाली और कुमाउनी लोक-भाषा के ऐसे ही अनेक लोक-गीत, लोक-मुहावरे, लोक उक्तियां और आणा-औखणा (पहेलियां) सन्दर्भ, प्रयोग और व्यवहार के अभाव में धीरे-धीरे खत्म होने के खतरे तक पहुँच रहे हैं।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण के माध्यम से स्पष्ट है कि 'घराटों' के आस-पास धान की पर्याप्त मात्रा में खेती होती थी। इन सेरों (धान के खेतों) में धान की खेती सम्मिलित रूप से की जाती है। इसका स्पष्ट उल्लेख वहाँ के लोक-साहित्य में हुआ है- "रोपाई के लिए पर्याप्त जल खेतों में भर जाने के बाद ईश्वर से कृषक प्रार्थना करते हैं कि वे वर्षा को रोक लें और हमें छाया प्रदान करें।"- कृष्णानन्द जोशी, कुमाऊँ का लोक साहित्य, प्रकाश बुक डिपो बरेली, संस्करण 1982. दरअसल सेरे या स्यार वो खेत होते थे जहाँ 'घराट' की कूलों या नहरों से सिंचाई होती थी। लेकिन 'घराटों' के खत्म होने के साथ ही ये खेत भी बंजर हो गये हैं।

उत्तराखण्ड के घराटों के लुप्त होने के साथ ही वहाँ की भाषा और संस्कृति के अनेक महत्वपूर्ण तत्व लुप्त होते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यदि घराट नहीं बचेंगे, तो गढ़वाली कुमाउंनी भाषा के कई शब्द और बहुत सारी परंपराएं भी समाप्त हो जाएंगी।

सामुदायिक संस्कृति से सामाजिक समरसता बनी रहती है। स्थानीय स्तर पर घराटों का इसमें महत्वपूर्ण योगदान रहा है। सामुदायिक संस्कृति के खत्म होने के खतरे को पहचान कर घराटों ने प्राकृतिक पर्यावरण को बिना शर्त संरक्षित करने का काम किया है। घराटों के खत्म होने से पर्यावरण संरक्षण की भी अनदेखी हो रही है।

'घराटों' के आस-पास चरागाह भी होते थे जहाँ गाँव वाले पिसाई के साथ-साथ अपने पशुओं को भी चराने के लिए लाते थे। इससे न केवल लोक समाज अपनी कठिन पारिस्थितिकी में अपने श्रम की बचत कर लेता था बल्कि सहजता से अपने पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन भी कर लेता था।

मैं समझता हूँ कि इस अध्ययन से समाज में घराटों के संरक्षण के प्रति जागरूकता बढ़ेगी। साथ ही स्थानीय लोक-समाज अपने पारंपरिक ज्ञान और लोक-कौशल के प्रति गौरव का भाव अनुभव करेगा। राज्य सरकार घराटों के संरक्षण के लिए समुचित नीति का निर्माण कर सकेगी। घराट संचालन से जुड़े लोगों की समस्याओं को समाज के सामने लाकर उनके व्यावहारिक और असरकारक समाधान के प्रति सरकार एवं लोगों को संवेदनशील एवं जवाबदेह बनाने की दिशा में प्रयत्न किया जा सकेगा। लुप्त होती लोक थाती और लोक संस्कृति को बचाने के लिए सामाजिक जागरूकता बढ़ेगी।

उत्तराखण्ड में सरकारी सहायता से लगभग तेरह सौ घराटों को पुनर्जीवित या उन्नतीकृत किया गया है, जो अत्यन्त अल्प है।

यदि निम्न कारगर उपायों का प्रभावी क्रियान्वयन किया जाय तो घराटों की सामुदायिक विरासत को खत्म होने से बचाया जा सकेगा-

- 'घराटों' को अधिक से अधिक सरकारी एवं गैर सरकारी सहायता उपलब्ध कराना
- आसपास के 'घराटों' के साथ नेटवर्किंग स्थापित करना
- वर्षा ऋतु में क्षतिग्रस्त कूलों (नहरों) का समय पर दुरुस्तीकरण करना
- 'घराटों' तक पहुंचने के लिए सुगम पहुंच का मार्गों का निर्माण करना तथा इन्हें राजमार्गों अथवा सड़कों से जोड़ना
- 'घराट' उत्पाद की कमजोर मांग को बढ़ाना
- 'घराट' के उपकरणों की आपूर्ति श्रृंखला के अभाव को दूर करना
- 'घराट' प्रोडक्ट की ब्रांडिंग और कार्यशील घाटों का उन्नतीकरण करना
- 'घराट' टूरिज्म और 'घराट' के आस-पास मत्स्यपालन को बढ़ावा देना
- 'घराटों' को बहुउद्देश्यीय जल विद्युत परियोजनाओं के रूप में विकसित करना

घराटों को एक नई जिंदगी का मकसद सिर्फ चक्की का विकल्प तैयार करना भर नहीं है, बल्कि नई पीढ़ी का परिचय इस छोटी लेकिन कारगर तकनीक से करवाकर स्थानीय संस्कृति एवं लोक बोली का संरक्षण भी है। ऊर्जा से जुड़ी एक ऐसी तकनीक जो हमारी संस्कृति का हिस्सा रही है। संस्कारों के करीब रही है। और अगर हम इन घराटों को बचाए रखने में कामयाब हुए तो यह जीत होगी उन सपनों की जो हमारे पूर्वजों ने देखे थे। कुदरत के साथ तालमेल के सपने, प्रकृति के साथ बन्धन के सपने, अपनी बोली, भाषा, परम्परा और संस्कृति के साथ जीने के सपने।

सन्दर्भ :-

1. चन्द्रपाल सिंह रावत, गढ़वाल और गढ़वाल (संपादित), विनसर पब्लिशिंग कं. पौड़ी, उत्तराखण्ड, संस्करण 1997
2. श्रीनिवास श्रीकान्त, कथा में पहाड़ (संपादित), संवाद प्रकाशन मेरठ, उ. प्र. संस्करण 2009
3. डॉ. चन्द्रमोहन अग्रवाल, उत्तरांचल के अंचल से, इण्डिया पब्लिशर्स डिस्ट्रिब्यूटर्स, दिल्ली, संस्करण 2001
4. डॉ. गोविन्द चातक, भारतीय लोक संस्कृति का सन्दर्भ : मध्य हिमालय, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
5. डॉ. मोहनलाल बाबुलकर, गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1964
6. डॉ. सविता मोहन, उत्तराखण्ड समग्र अध्ययन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2007

7. डॉ. सरला चंदोला, उत्तराखण्ड का लोक साहित्य और जनजीवन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999
8. डॉ. हरिदत्त भट्ट "शैलेश", गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, लखनऊ
9. पं. हरिकृष्ण रतूड़ी, गढ़वाल का इतिहास, भागीरथी प्रकाशन, टिहरी
10. डॉ. श्याम परमार, भारतीय लोक साहित्य, राजकमल पब्लिकेशन, बम्बई
11. <https://en.gaonconnection.com/water-mills-uttarakhand-gharat-culture-sandrp-himalayas-pauri-rural-india/>
12. https://www.infinityfoundation.com/mandala/t_es/t_es_shah_m_gharats_frameset.htm
13. <http://worldwatersummit.in/presentation/2019/Day-2/session-4/Presentation-1.pdf>
14. <http://www.idshimalaya.org/project-three.html>
15. <https://www.kafaltree.com/gharat-traditional-water-mills-uttarakhand/>